(1)

PAPER-ISECTION-B

राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व

(The Directive Principles of State Policy)

राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व भारतीय संविधान की अद्भुत विशेषता है। परन्तु भारतीय संविधान ही एकमात्र ऐसा संविधान नहीं जिसमें इनका समावेश किया गया है। आयरलैण्ड, स्पेन, इटली, फ्रांस, जर्मनी, यूगोस्लाविया, साम्यवादी चीन आदि संविधानों में भी इसी प्रकार के उपबन्धों की व्यवस्था की गई है। भारत ने इन्हें आयरलैण्ड के संविधान से अपनाया है। आयरलैण्ड ने इन्हें स्पेन गणराज्य के संविधान से प्राप्त किया है। स्पेन गणराज्य के संविधान ने पहली बार ऐसे तत्त्वों को संविधान में शामिल किया था।

भारतीय संविधान में उल्लिखित राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का क्षेत्र आयरलैण्ड के संविधान में उल्लिखित तत्त्वों से कहीं अधिक व्यापक है। ये केवल सामाजिक, आर्थिक और सामान्य न्याय की ही बात नहीं करते, अपितु ये उन उद्देश्यों को भी अभिव्यक्त करते हैं जिन पर भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को निर्धारित किया जायेगा। ये उस सामाजिक दशा (अवस्था) की ओर संकेत करते हैं जिसकी संविधान-निर्माता स्थापना करना चाहते हैं। संविधान की उद्देशिका में सभी नागरिकों के लिए जिस सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की कल्पना की गयी है, उसे भाग IV के राज्य के नीति के निर्देशक तत्त्वों में लिपिबद्ध किया गया है। संविधान निर्माता राजनैतिक लोकतन्त्र के साथ आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना चाहते थे। वे राज्य को केवल पुलिस राज्य ही नहीं, अपितु "लोककल्याणकारी" और "समाजसेवी" राज्य भी बनाना चाहते थे।

आर्थिक और सामाजिक नीतियों के सम्बन्ध में राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व किसी ठोस योजना के कार्यक्रम को प्रस्तुत नहीं करते बल्कि ये केवल "सामान्य कल्याण" की भावना को अभिव्यक्त करते हैं। संविधान-निर्माताओं की धारणा थी कि सरकार चाहे अनुदारवादी हो या उदारवादी, सुधारवादी हो या प्रगतिशील, सभी को आर्थिक और सामाजिक प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए प्रयत्न करना चाहिए। राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व "ऐसे दो दर्पणों के समान हैं जिनमें हम भविष्य के समाज और सरकार के स्वरूपों को देख सकते हैं।"

राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का वर्गीकरण

(Classification of the Directive Principles of State Policy)

भारतीय संविधान के भाग चार के 16 अनुच्छेदों में (अनुच्छेद 36 से 51 तक) राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है। इस भाग के अतिरिक्त अनुच्छेद 350 A और 351 में भी इनका उल्लेख मिलता है। अनुच्छेद 350 A प्राथमिक शिक्षा को मातृभाषा में देने की व्यवस्था करता है और अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के विकास की बात करता है।

संविधान ने राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का वर्गीकरण स्पष्ट रूप से नहीं किया है। उन्हें मुख्यतः निम्नलिखित चार भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) लोककल्याणकारी राज्य से सम्बन्धित तत्त्व- [illegible] और सामाजिक न्याय की स्थापना चाहते हैं। इन्हें [illegible] इसके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं-

(i) जनसमुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार [illegible] कि सामान्य कल्याण में सहायक हो।
(ii) आर्थिक व्यवस्था का इस प्रकार संचालन हो कि [illegible] उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण कुछ हाथों में न हो सके।
(iii) केवल व्यक्तियों में ही नहीं बल्कि [illegible] में लगे समूहों की आय की असमानताओं को [illegible] करना और प्रतिष्ठा, सुविधाओं एवं अवसरों की असमानताओं [illegible] प्रयास करना।
(iv) सभी नागरिकों को जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों।
(v) श्रमजीवियों के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरों की [illegible]
(vi) उद्योगों के प्रबन्ध में मजदूरों के भाग लेने की व्यवस्था करना।
(vii) पुरुष और स्त्री दोनों के लिए समान कार्य के लिए [illegible]
(viii) सभी नागरिकों के स्वास्थ्य और शक्ति के [illegible]
(ix) बच्चों, किशोरों और स्त्रियों के नैतिक और भौतिक [illegible]
(x) संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष की आयु [illegible] लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।
(xi) बच्चों तथा नवयुवकों को शोषण से बचाना तथा [illegible] उपयुक्त अवसर तथा सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
(xii) बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी, [illegible] अवस्था में, जहाँ तक हो सके, राज्य द्वारा [illegible] की व्यवस्था हो।
(xiii) सभी के लिए समान आचार संहिता।

(2) गाँधीवादी विचारधारा से सम्बन्धित तत्त्व- इनके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित हैं

(i) जनसमुदाय के पिछड़े हुए तथा निर्बल वर्गों के लिए शैक्षणिक और आर्थिक [illegible] की व्यवस्था।

[illegible] जातियों और अनुसूचित जन-जातियों तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों के [illegible] की व्यवस्था।

[illegible] वर्गों को समान [illegible] तथा मुफ्त कानूनी सहायता उपलब्ध [illegible] की व्यवस्था करना।

[illegible] पर कृषि की व्यवस्था।

[illegible] को सुधारने की व्यवस्था करना तथा दुधारू पशुओं, विशेषकर [illegible] की व्यवस्था।

[illegible] वनों तथा वन्य जीवों की सुरक्षा [illegible]

[illegible] पर, कुटीर उद्योगों के विकास की [illegible]

[illegible] के विकेन्द्रीकरण और स्वायत्त शासन की इकाइयों के विकास के [illegible] के निर्माण की व्यवस्था।

[illegible] और कार्यपालिका को एक-दूसरे से पृथक् रखने की व्यवस्था।

[illegible] वस्तुओं के निषेध की व्यवस्था।

[illegible] से सम्बन्धित तत्त्व-ये वे तत्त्व हैं जो अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में [illegible] का अभिव्यक्त करते हैं। इन्हें अनुच्छेद 51 में लिपिबद्ध किया गया है। [illegible] निम्नलिखित हैं-

[illegible] के रूप में युद्ध का परित्याग।

[illegible] शान्ति और सुरक्षा में वृद्धि।

[illegible] एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्धों का विकास।

[illegible] सन्धियों और कानून के प्रति सम्मान।

[illegible] द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे को बढ़ावा।

[illegible] से सम्बन्धित तत्त्व-इनका उद्देश्य ऐतिहासिक और राष्ट्रीय [illegible] और कला के स्थानों के बिगाड़, विरूपण, नाश, हटाव, बिक्री और [illegible]

[illegible] से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त भारत में [illegible] व्यवस्था की स्थापना करने वाले सकारात्मक प्रावधान हैं।

[illegible] नीति निर्देशक तत्त्वों की आलोचना

([illegible] Principles of State Policy)

[illegible] आलोचना का पात्र रहा है। संविधान [illegible] संविधान सभा के एक सदस्य के अनुसार, "ये निर्देशक [illegible] इन सिद्धान्तों में इतना लचीलापन है कि इस सदन का कोई भी [illegible]

(२)

[illegible] ने इनकी तुलना "नव वर्ष के उन शुभकामना प्रस्तावों से की है, जिन्हें 2 जन॰ तोड़ दिया जाता है।"

राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्तों की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. वाद-योग्य नहीं या बाध्यकारी शक्ति का अभाव-नीति निर्देशक तत्त्व वाद-योग्य नहीं हैं अर्थात् इन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता। इस तरह नीति निर्देशक तत्त्व न तो मौलिक कानून हैं और न ही गौण कानून हैं। जैसा की, एन. [illegible] ने लिखा है कि नीति निर्देशक तत्त्व "निर्देशक हैं आदेशिक नहीं। ये न तो वैध अधिकारों को उत्पन्न करते हैं और न ही वैध उपचारों को।" संवैधानिक दृष्टिकोण के लिए इनका कोई महत्त्व नहीं। ये [illegible] करते हैं और न ही [illegible]। वाद-योग्य नहीं होने के कारण इनकी प्रकृति मूल अधिकारों की तरह बाध्यकारी नहीं है। इन्हें लागू करने के लिए राज्य को बाध्य नहीं किया जा सकता है।

2. घोषणायें मात्र-नीति निर्देशक तत्त्व राज्य पर वैध कर्त्तव्यों को आरोपित नहीं करते, इसलिए ये केवल दिखावा मात्र हैं। इन्हें "पवित्र आशायें", "थोथे वचन", "दिखावा मात्र", "फिजूल" और "पुरानी थोथी बातें" कहकर निन्दित किया गया है। ये ऐसी उच्च भावनायें हैं जिन्हें ऊँचे शब्दावली में तो अभिव्यक्त किया गया है, परन्तु वो प्रभावहीन होने से [illegible] हैं।

3. असंगत, निरर्थक और अर्थहीन-नीति निर्देशक तत्त्व असंगत, अस्पष्ट, व्यर्थ, [illegible] और अर्थहीन होने से महत्त्वहीन हैं। सर आइवर जेनिंग्स ने कहा है कि, "राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों का कोई महत्त्व नहीं और भारतीय संविधान में असंगत हैं।" यह समझ में नहीं आता कि रोजगार, समान वेतन, जीविका योग्य मजदूरी, धन और उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रीकरण, पिछड़े हुए वर्गों के उत्थान आदि महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों को स्मारकों की सुरक्षा जैसे महत्त्वहीन प्रश्नों के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है?

4. महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को टालने का प्रयास-नीति निर्देशक तत्त्वों के अध्याय में उल्लिखित तत्त्वों को मूल अधिकारों के अध्याय में न लिखकर संविधान-निर्माताओं ने महत्त्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को टालने का प्रयास किया है। नीति निर्देशक तत्त्व न तो श्रमिकों और मालिकों के सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं और न सम्पत्ति की जटिल समस्याओं का कोई समाधान प्रस्तुत करते हैं। ये निजी पूँजी और राष्ट्रीयकरण तथा अहस्तक्षेप और योजनाबद्ध नीतियों में कोई स्पष्ट सामन्जस्य स्थापित नहीं करते। ये इस बात की कोई गारन्टी नहीं देते कि परिवर्तित परिस्थितियों में इनका पालन की जायेगी। ये इस बात से [illegible] हैं कि लोक-कल्याणकारी राज्य और आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना [illegible]

5. सर्वांगीणता का अभाव-नीति निर्देशक तत्त्वों में [illegible] का अभाव है। उदाहरणार्थ, मद्य-निषेध जैसे निर्देशकों का अनुसरण करने से [illegible] प्रदान, इससे राज्य को करोड़ों रुपये के राजस्व से हाथ धोने पड़ते हैं। दूसरे, इससे [illegible] संधान, वितरण तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

6. अप्रासंगिक-वर्तमान समय में नीति निर्देशक सिद्धान्तों की प्रासंगिकता [illegible], तथा इनके अधिकतर [illegible] इनमें आधुनिकता का अभाव है, [illegible]

3

[illegible] का कोई सामयिक महत्त्व नहीं है।

7. क्रियान्वयन में सरकारी उत्साह नहीं-पिछले 34 वर्षों का अनुभव इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने इन नीति निर्देशक सिद्धान्तों को लागू करने में अधिक उत्साह का प्रदर्शन नहीं किया है। [illegible] क्रियान्विति सम्भव थी।

राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का महत्त्व
(Importance of the Directive Principles of State Policy)

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद भी यह कहना अनुचित है कि नीति निर्देशक तत्त्व अतार्किक, असामयिक, अनावश्यक, सारहीन और महत्त्वहीन हैं। वस्तुतः ये तत्त्व जहाँ कार्यपालिका के लिए दीपक हैं, विधान मण्डलों के लिए आदर्श हैं और न्यायपालिका के लिए प्रकाश स्तम्भ हैं, वहीं ये भारत में लोककल्याणकारी राज्य और आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना में सहायक हैं। ये तत्त्व देश के प्रशासन के मूलभूत तत्त्व हैं। इनके महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है-

1. देश के प्रशासन के मूलाधार-नीति के निर्देशक तत्त्व वाद-योग्य न होते हुए भी संविधान की "अन्तरात्मा" हैं। संविधान में इनका उल्लेख ही इन्हें पवित्र, अनुशासित और गौरव प्रदान करता है। संविधान इन्हें देश के प्रशासन में मूलभूत बनाता है। ये केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों पर उत्तरदायित्व डालते हैं कि कानून-निर्माण करते समय वे इन तत्त्वों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें। ये राज्य का पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे स्थायी अनुस्मरण पत्र हैं, जो केन्द्र तथा राज्य सरकारों को इस बात की याद दिलाते रहते हैं कि सामान्य हित के लिए उन्हें क्या करना चाहिए? इस दिशा में उनके क्या कर्तव्य [illegible] उत्तरदायित्व हैं ?

2. सरकारों के औचित्य की कसौटी-यह सत्य है कि नीति के निर्देशक तत्त्व राज्य पर कोई वैध कर्तव्य आरोपित नहीं करते, परन्तु इस आधार पर नीति के निर्देशक तत्त्वों को अर्थहीन या महत्त्वहीन मान लेना भ्रमपूर्ण है। लोकतन्त्र में सबसे महान् और शक्तिशाली न्यायालय जनमत होता है। कोई भी लोकतान्त्रिक सरकार इनकी उपेक्षा करके बहुत देर तक सत्तारूढ़ नहीं रह सकती। नीति निर्देशक तत्त्व किसी भी सरकार की सफलता और असफलता के मापदण्ड हैं। ये तत्त्व विधान मण्डल के बाहर जनता और विधान मण्डल के अन्दर विरोधी दल के हाथों में ऐसी तलवार हैं, जिसका प्रयोग सामान्य हित में किया जा सकता है और तत्कालीन सरकार की लोकहित के प्रति [illegible] जनमत जितना सबल, सुदृढ़, तीव्र एवं जागरूक होगा, नीति निर्देशक तत्त्वों की क्रियान्विति उतनी ही निश्चित होगी।

3. न्यायालयों के लिए प्रकाश-स्तम्भ-नीति के निर्देशक तत्त्व वाद-योग्य नहीं, फिर भी वे न्यायालय के लिए प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं। [illegible] कानून के औचित्य को सिद्ध करने के लिए न्यायालय ने नीति निर्देशक तत्त्वों से भारी [illegible] प्राप्त किया है। उदाहरणतः बम्बई राज्य बनाम एफ. एन. बलसारा के मुकदमे में न्यायालय ने [illegible] 47 का सहारा [illegible] विजय कॉटन [illegible]

[illegible] के अनुच्छेद 43 को ध्यान में रखते हुए [illegible] दिया। इसलिए [illegible] बनाम भारत संघ के मामले में [illegible] से सम्बन्धित नीति निर्देशक तत्त्व को [illegible] अनुच्छेद 32 के अधीन न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है। [illegible] न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि नीति निर्देशक तत्त्व [illegible] सकते तथापि मूल अधिकारों के क्षेत्र विस्तार को निर्धारित करते [illegible] तत्त्वों की उपेक्षा नहीं करेंगे।

4. अतिवादिता से सुरक्षा-नीति निर्देशक तत्त्व [illegible] अतिवादिता के विरुद्ध बीमा-सुरक्षा है। इन्हें किसी [illegible] की इच्छा पर आधारित नहीं किया गया। इन्हें [illegible] है। अतः कोई भी अनुदारवादी, उदारवादी, सुधारवादी या क्रान्तिकारी [illegible] अनुसरण नहीं कर सकता। सत्तारूढ़ दल की प्रकृति और [illegible] परिवर्तन करने या उसके अन्त करने की आवश्यकता नहीं। नीति के निर्देशक [illegible] अर्थव्यवस्था की स्थापना नहीं करते। वे केवल आर्थिक और सामाजिक लोकतन्त्र [illegible] की बात करते हैं। अतः प्रत्येक सत्तारूढ़ दल अपने-अपने कार्यक्रम और नीति [illegible] यथाशक्ति आर्थिक और सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना कर सकता है। [illegible] लिखा है कि, "राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों द्वारा भारतीय संविधान [illegible] की घातक सर्वहारा वर्ग की तानाशाही और जनसाधारण की आर्थिक सुरक्षा [illegible] पूँजीवादी-अल्पतन्त्र दोनों की अतिवादिताओं में संतुलन स्थापित करता है।"

5. नैतिक आदर्श प्रेरणा के स्रोत होते हैं-नीति निर्देशक [illegible] होते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि नैतिक आदर्शों और [illegible] के जीवन में प्रेरणाओं का संचार किया है। उदाहरणतः [illegible] नागरिक अधिकारों की घोषणा और अमरीकी संविधान की [illegible] नहीं, फिर भी करोड़ों व्यक्तियों का जीवन इन्हीं से प्रभावित हुआ है। भारत में नीति निर्देशक [illegible] नैतिकता की आचार-संहिता है।

6. भारतीय परिस्थितियों से प्रेरित-नीति निर्देशक तत्त्व [illegible] निर्माता दूसरे देशों के संविधानों से प्रभावित हुए तो वे भारतीय परिस्थितियों से भी [illegible] हैं। उदाहरणतः मद्य निषेध, ग्राम पंचायतों की स्थापना, कुटीर उद्योगों का विकास, [illegible] पोषण, पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का [illegible] और सामाजिक उत्थान, उद्योगों में मजदूरों का भाग, [illegible] संरक्षण, पर्यावरण की सुरक्षा आदि कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो भारतीय परिस्थितियों [illegible]

7. नीति निर्देशक तत्त्वों को [illegible] यह मत भ्रामक प्रतीत होता है कि [illegible]

4

[illegible] क्रियान्वित करने का प्रयास किया है। उदाहरणतः सम्पत्ति के कुछ हाथों में [illegible] नियन्त्रण रखने के लिए उसे मूल अधिकारों के अध्याय से निकाल [illegible] के मुख्य-मुख्य साधनों को सार्वजनिक नियन्त्रण में ले लिया गया है तथा [illegible] के लिए अनेक शैक्षणिक और आर्थिक सुविधायें जुटाई गयी हैं। पिछले 54 वर्षों [illegible] द्वारा इनके अनेक प्रावधानों को लागू करने का सार्थक प्रयास किया [illegible]

[illegible] नीति के निर्देशक तत्त्वों और मूल अधिकारों में अन्तर

([illegible] Fundamental Rights and [illegible] Principles of State Policy)

[illegible] और नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर को निम्नलिखित रूप से विश्लेषित [illegible] सकता है-

[illegible] निषेधाज्ञायें हैं। ये राज्य की सत्ता को मर्यादित करते हैं तथा उसे कुछ [illegible] हैं। दूसरी ओर, नीति निर्देशक तत्त्व सकारात्मक आज्ञायें हैं। ये [illegible] समाज की प्रगति के लिए कुछ कार्य करने के लिए निर्देश देते हैं।

[illegible] वाद-योग्य हैं। जब कभी कार्यपालिका आदेश या व्यवस्थापिका के [illegible] मूल अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं तो वे न्यायालयों से संरक्षण प्राप्त कर [illegible] दूसरी ओर, नीति निर्देशक तत्त्व वाद-योग्य नहीं। यदि राज्य इनकी उपेक्षा करता है [illegible] न्यायालय से संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकते।

[illegible] राज्य पर कानूनी बन्धन उत्पन्न करते हैं और यदि कार्यपालिका आदेश [illegible] के कानून नागरिक अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं तो न्यायालय उस मात्रा [illegible] घोषित कर सकती है जिस मात्रा तक वे अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। [illegible] नीति निर्देशक तत्त्व राज्य पर नैतिक बन्धन आरोपित करते हैं। न्यायालय किसी [illegible] व्यवस्थापिका के कानून को इस आधार पर अवैध घोषित नहीं कर [illegible] नीति निर्देशक तत्त्वों के प्रतिकूल हैं।

[illegible] व्यक्ति (नागरिक) के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करते हैं परन्तु [illegible] तत्त्वों का सम्बन्ध निजी अधिकारों से नहीं, इनका सम्बन्ध समाज के अधिकारों [illegible] सार्वजनिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कानून द्वारा कार्यान्वित [illegible] सकता है।

[illegible] देश में राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना करते हैं, जबकि नीति-[illegible] की क्रियान्विति से आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है।

[illegible] भारतीय संविधान में पाश्चात्य देशों से ग्रहण किये गये हैं, जबकि नीति [illegible] संविधान में स्थान दिये जाने के पीछे भारतीय सांस्कृतिक परिवेश तथा

मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों में क्या कोई विरोध है?

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या मूल अधिकारों तथा नीति निर्देशक सिद्धान्तों में कोई विरोध है। [illegible] प्रतीत नहीं होता कि मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्त्वों में विरोध है। [illegible] दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। यदि संविधान का भाग तीन भारतीय संविधान के दर्शन को अभिव्यक्त करता है तो भाग चार उसके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले आदर्शों और इन आदर्शों को फलित करने वाली रीतियों को अभिव्यक्त करता है। उदाहरणतः यदि भाग तीन के अनुच्छेद 14 से 18 "नागरिकों को कानून के समक्ष समानता" और "विधियों के अधीन समान संरक्षण" का अधिकार प्रदान करते हैं तो भाग चार के अनुच्छेद 38 और 39 उन [illegible] परिस्थितियों की रचना करने की बात करते हैं जिनके विद्यमान होने पर ही वास्तविक या [illegible] वास्तविक समानता विद्यमान हो सकती है। भूतपूर्व न्यायाधीश के.एस. हेगड़े ने लिखा है कि "संविधान के चौथे भाग में दिये गये उपबन्ध तीसरे भाग में दिये गये उपबन्धों को पूरा करते हैं और ये दोनों भाग मिलकर कल्याणकारी लोकतान्त्रिक राज्य के निर्माण के लिए एक योजना प्रस्तुत करते हैं।"

वर्ष 1980 में मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के विवाद में उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्त्वों के सम्बन्धों को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। न्यायालय का मत है कि "नीति निर्देशक तत्त्वों और मूल अधिकारों में तालमेल और सन्तुलन संविधान की मूल विशेषता है। एक को दूसरे से प्राथमिकता देना उस तालमेल में बाधा प्रस्तुत करना है।" न्यायालय का मत है कि, "यदि नीति निर्देशक तत्त्वों में निर्दिष्ट आदर्शों की प्राप्ति के लिए मानव स्वतन्त्रता की कीमत चुकानी पड़ती है तो वे अत्याचार के लिए बहाना मात्र बन जायेंगे।" अतः उच्चतम न्यायालय ने 42वें संशोधन द्वारा संशोधित 31 (c) धारा को अर्थात् 42वें संशोधन की धारा 4 को अवैध घोषित कर रद्द कर दिया है क्योंकि यह मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्त्वों के सन्तुलन को नष्ट करती है और नीति निर्देशक तत्त्वों को क्रियान्वित करने के लिए पारित किसी भी कानून को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति से पूर्णतः बाहर रखती है भले ही वह अनुच्छेद 14 और 19 में गारण्टी दिये गये अधिकारों से असंगत ही क्यों न हो। न्यायालय का मत है कि अनुच्छेद 14 और 19 के बिना अर्थात् समानता और स्वतन्त्रता के अधिकार के बिना स्वतन्त्र प्रजातन्त्र का अस्तित्व सम्भव नहीं। अतः इन्हें सुरक्षित रखा जाना चाहिए। संक्षेप में, मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्त्वों में से किसी एक को प्राथमिकता देने की आवश्यकता नहीं अपितु दोनों में तालमेल और सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता है। संविधान-निर्माताओं की [illegible] भी और प्रजातन्त्र की भी यही माँग है।

नीति निर्देशक तत्त्वों का महत्त्व को स्पष्ट करते हुए ग्रेनविल ऑस्टिन ने अपनी पुस्तक द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन : कार्नरस्टोन ऑफ ए नेशन में लिखा है कि, "भारतीय संविधान [illegible] एक सामाजिक प्रलेख है। इसकी अधिकांश व्यवस्थायें या तो [illegible] इसे प्राप्त करने हेतु आवश्यक

[illegible] मूल अधिकार और राज्य की नीति के निर्देशक तत्व [illegible] (हृदय) हैं। ये संविधान की आत्मा हैं।"

नीति निर्देशक तत्व [illegible] मूल अधिकारों की [illegible] आवश्यकता है [illegible] निर्देशक तत्वों की आवश्यकता है [illegible] मूल अधिकार भी नीति निर्देशक तत्वों के अनुरूप [illegible] विद्यमान रह सकते हैं। यही [illegible] मूल अधिकारों पर तर्कसंगत सीमाओं की [illegible] सुनिश्चित करने के लिए नीति निर्देशक तत्वों का आश्रय लिया है।

संक्षेप में, मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों में कोई विरोध या विरोधाभास नहीं अपितु ये एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों का ही उद्देश्य व्यक्ति की गरिमा तथा प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाना है।

संविधान संशोधन एवं नीति निर्देशक तत्व
(Constitution Amendment and Directive Principles)

संविधान संशोधनों द्वारा नीति निर्देशक तत्वों के महत्त्व को बढ़ाने का प्रयास किया गया है। उदाहरणतः 25वें संविधान संशोधन अधिनियम ने अनुच्छेद 31 में एक नया अनुच्छेद 31 c [illegible] अनुच्छेद 39(b) और (c) में उल्लिखित निर्देशक तत्वों को क्रियान्वित करने के लिए कानून का निर्माण कर सकती है। इस प्रकार का कानून इस [illegible] कि यह अनुच्छेद 14 और 19 में दिये गये मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है। इस तरह 25वें संशोधन अधिनियम ने अनुच्छेद 39(b) और (c) में दिये गये नीति निर्देशक तत्वों को मूल अधिकारों पर प्राथमिकता प्रदान कर दी। केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस संशोधन अधिनियम को वैध घोषित किया है। परन्तु जब 42वें संविधान अधिनियम ने अनुच्छेद 31 C में पुनः संशोधन करके भाग चार में उल्लिखित सभी नीति के निर्देशक तत्वों को मूल अधिकारों पर प्राथमिकता प्रदान कर दी तो न्यायालय ने 1980 में मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ के मामले में 42वें संशोधन अधिनियम की इस व्यवस्था को अवैध घोषित कर रद्द कर दिया। न्यायालय का मत था कि यह व्यवस्था संविधान के मूल ढाँचे को नष्ट करती है [illegible] न्यायालय का मत है कि, "नीति निर्देशक तत्वों और मूल अधिकारों में सन्तुलन और सामंजस्य संविधान की मूल विशेषता है। एक को दूसरे पर प्राथमिकता देना [illegible] उत्पन्न करना है।"

42वें संविधान संशोधन ने जिन अन्य [illegible] नीति निर्देशक तत्वों में जोड़ा है वे ये हैं- (i) बच्चों तथा नवयुवकों को [illegible] स्वस्थ विकास के लिए उपयुक्त अवसर एवं सुविधाएँ उपलब्ध कराना, (ii) [illegible] समान न्याय दिलाना [illegible] कानूनी सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना, (iii) [illegible] (iv) पर्यावरण की सुरक्षा एवं वनों तथा वन्य जीवों [illegible]

44वें संविधान संशोधन से भी नीति के निर्देशक तत्वों में [illegible] अनुसार, "राज्य व्यक्तियों में ही नहीं अपितु राज्य के [illegible] समूहों की आय की असमानताओं को [illegible] और प्रतिष्ठा, सुविधाओं एवं अवसर की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास [illegible]

उपर्युक्त संविधान संशोधनों के माध्यम से भारत सरकार ने राज्य के नीति निर्देशक [illegible] तेजी से क्रियान्वित करने की पहल की है।

राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों की क्रियान्विति
(Implementation of the Directive Principles of State Policy)

यह सत्य है कि भाग चार द्वारा राज्य पर आरोपित किये गये कर्त्तव्यों को [illegible] पूर्ण तरह लागू न करने से देश में पूर्ण लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना नहीं [illegible] उदाहरणतः आज भी जनता का एक बहुत बड़ा भाग जीविकोपार्जन के [illegible] है। निर्वाह योग्य मजदूरी आज भी केवल चर्चा का विषय है। अर्थव्यवस्था [illegible] हुआ है कि इसके अधिकांश लाभ कुछ पूँजीपतियों को ही होता है। [illegible] कुछ धनाढ्य लोगों का अधिकार है। चिकित्सा सुविधायें अभी भी अपर्याप्त हैं। [illegible] परिस्थितियों का अभाव है। भ्रष्टाचार, पक्षपात, संकीर्ण प्रान्तीयता और जातीयता [illegible] विद्यमान है। बच्चों को ऐसे धन्धों को अपनाना पड़ता है जो उनकी आयु और शक्ति के [illegible] उपयुक्त नहीं होते। शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों में बेरोजगारी [illegible] समाज में गम्भीर आर्थिक विषमतायें विद्यमान हैं। आज भी [illegible] पिता की सम्पत्ति पर निर्भर करती है। अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित [illegible] सामाजिक अन्याय की शिकार हैं। आज भी भारत के विभिन्न समुदायों के [illegible] नियम हैं और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ और सबल बनाने के लिए सभी [illegible] सिविल संहिता का अधिनियम पारित नहीं किया जा सका। मई, 1986 में [illegible] महिला (तलाक सुरक्षा) अधिनियम अनुच्छेद 44 में कल्पित समान [illegible] प्राप्ति को धूमिल करता है। अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा [illegible] निषेध को पूरी तरह लागू नहीं किया गया। [illegible] ग्राम पंचायतों [illegible] में लोकतान्त्रिक संस्थायें नहीं कही जा सकती। ग्राम पंचायतें [illegible] जातीय भेद-भाव से ऊपर उठ सकी हैं। इन पंचायतों [illegible]

[illegible] वास्तविकताओं के बाद भी यह स्वीकार करना होगा कि राज्य को [illegible] से प्रेरित रही है जिनको आकांक्षा नीति निर्देशक तत्त्वों में अभिव्यक्त की गई है। [illegible] लोक कल्याणकारी राज्य बनाने में सहायक हैं। ये मुख्यतः उल्लेखित हैं-

(1) पंचवर्षीय योजनाओं की [illegible]

[illegible] ने नीति निर्देशक सिद्धान्तों को [illegible] प्रयास किये हैं। इससे जन-साधारण लाभान्वित हुआ है। [illegible] सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को रोकने के लिए अनेक [illegible] किया गया है। इस बारे में राष्ट्रीयकरण और [illegible] अपनाई गई है। जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण, बड़े-बड़े [illegible] तथा राजाओं के प्रिवीपर्सों की समाप्ति इस दिशा में [illegible]।

[illegible] को रोकने के लिए उत्पादन और [illegible] सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित किया गया है।
[illegible] के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया है [illegible] किया गया है।
[illegible] के लिए कम कानूनों का निर्माण किया गया है।
[illegible] की गई है। अनेक राज्यों में दसवीं कक्षा तक [illegible] की गई है। साक्षरता मिशन द्वारा निरक्षरता का अन्त [illegible] करने की दिशा में गंभीर प्रयास किये हैं।
[illegible] साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त किया है। कुछ राज्यों में [illegible] एवं वृद्धावस्था में पेन्शन की व्यवस्था की गई है।
[illegible] योजनाओं का उद्देश्य देहात की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना [illegible] खादी एवं उद्योग बोर्ड जैसी संस्थाओं का उद्देश्य गाँवों में कुटीर [illegible] देना है। कृषि विकास के लिए अनेक साधन जुटाये गये [illegible] को सुधारने का प्रयास किया गया है, अनेक राज्यों ने गायों तथा [illegible] पशुओं के वध पर रोक लगा दी है।
[illegible] अधिनियम और 1956 का हिन्दू उत्तराधिकार नियम का [illegible] के विकास की ओर प्रयास करना है।
[illegible] के शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक विकास [illegible] की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सुविधायें [illegible] अस्पृश्यता अब एक दण्डनीय अपराध है। समाज के अनुसूचित [illegible] तथा पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए अपनाई गई [illegible] को उन्नत बनाया गया है।
[illegible] प्रयास किये गये हैं। अनेक कार्यक्रमों को [illegible] प्रयास किये गये हैं।
[illegible] "योजना आयोग का प्रत्येक निश्चय [illegible] हुआ है।"

भारतीय संविधान एक सामाजिक प्रलेख या दस्तावेज है
(Indian Constitution - As a Social Document)

ग्रेनविल ऑस्टिन का यह कथन कि, "भारतीय संविधान प्रथमतः एवं प्रमुखतः एक सामाजिक प्रलेख है" पूर्णतः सत्य है। इसका मूल कारण यह है कि भारतीय संविधान की अधिकांश व्यवस्थाएँ या तो सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्य को प्रत्यक्षतः आगे बढ़ाती हैं या इसे प्राप्त करने हेतु आवश्यक दशाओं की स्थापना द्वारा इसे पूरा करने का प्रयास करती हैं। राष्ट्रीय पुनर्जागरण का लक्ष्य यद्यपि पूरे संविधान में व्याप्त है फिर भी संविधान के भाग तीन और चार ही, अर्थात् नागरिकों के मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्व ही, सामाजिक क्रान्ति की वचनबद्धता के मर्म (हृदय) हैं। ग्रेनविल ऑस्टिन भारतीय संविधान के इन दो भागों को ही "संविधान की अन्तरात्मा" कहता है।

मूल अधिकार भारत में एक स्वतन्त्र और समतावादी समाज की रचना करते हैं। ये व्यक्ति को एक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी राज्य के दमन और प्रतिबन्ध से ही मुक्ति नहीं दिलाते वरन् उसे समाज, समूह, जाति, बिरादरी अथवा व्यक्ति के दमन और प्रतिबन्ध से भी मुक्ति दिलाते हैं। मूल अधिकार किन्हीं विशेषाधिकारों को स्वीकार नहीं करते, यहाँ स्वतन्त्रता कुछ का नहीं सभी नागरिकों का अधिकार है। सभी की समानता और स्वतन्त्रता का संकल्प ही सामाजिक क्रान्ति के लक्ष्य को पुष्ट करता है। जिस विशेषाधिकार युक्त भारतीय समाज की रचना शताब्दियों पहले की गई थी और जिसे सामाजिक रूढ़ियों और प्रथाओं द्वारा बनाये रखा गया था, उसे भारतीय संविधान समाप्त करता है।

राज्य की नीति के निर्देशक तत्व भारतीय जनता को उसकी निष्क्रियता से मुक्ति दिलाते हैं। ये संविधान की उद्देशिका में समस्त नागरिकों के लिए परिकल्पित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की स्थापना चाहते हैं। ये आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना चाहते हैं। ये लोककल्याणकारी-समाजसेवी राज्य की सिद्धि चाहते हैं। ये साधारण से साधारण भारतीय जनता को उसकी दयनीय अवस्था से छुटकारा दिलाना चाहते हैं। ये इसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अवसर देना चाहते हैं। ये उसके सर्वोत्तम स्वरूप की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करना चाहते हैं।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के विवाद में न्यायाधीश हेगड़े और मुखर्जी ने भाग तीन और चार के सामाजिक उद्देश्यों को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है, "मूल अधिकारों का उद्देश्य एक समतावादी समाज की रचना करना है। इनका उद्देश्य सभी नागरिकों को समाज के दमन और प्रतिबन्धों से मुक्ति दिलाना है और सभी के लिए स्वतन्त्रता उपलब्ध करना है। निर्देशक तत्वों का उद्देश्य अहिंसक तरीके से सामाजिक क्रान्ति का पथ प्रशस्त करके कुछ सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों को शीघ्र प्राप्त करना है। इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति द्वारा संविधान सामान्य व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना चाहता है और हमारे समाज के ढाँचे को बदलना चाहता है। इनका उद्देश्य भारतीय जनता को सकारात्मक ढंग से स्वतन्त्र करना है। निर्देशक तत्वों को ईमानदारी से लागू किये बिना संविधान में परिकल्पित लोककल्याणकारी राज्य को प्राप्त करना सम्भव नहीं।"

(7)

मूल अधिकारों और निर्देशक तत्वों की जो व्यवस्थायें भारतीय संविधान की समाजिक प्रारूप (ढ़ाँचा) बनाती हैं, उन्हें मुख्यतः निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अभिव्यक्त किया जा सकता है-

1. समतावादी समाज-मूल अधिकार भारतीय समाज में एक नवीन प्रकार की समानता अर्थात् सामान्य नागरिकता की समानता की रचना करते हैं जो भारतीय समाज में पहले कभी विद्यमान नहीं रही। संविधान ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त ही नहीं करता, बल्कि राज्य को धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, स्थान या इनमें से किसी एक आधार पर नागरिकों में भिन्नता करने की मनाही करता है। संविधान अस्पृश्यता तथा इसी प्रकार की अन्य सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करता है। संविधान महिलाओं एवं बच्चों की सुरक्षा हेतु तथा पिछड़ी हुई जातियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों के उत्थान के लिए विशेष व्यवस्थायें करता है। संविधान अल्पसंख्यक वर्गों की लिपि, भाषा तथा संस्कृति की सुरक्षा का आश्वासन देता है। ये सभी तत्व मिलकर भारत में एक समतावादी समाज की रचना करते हैं। एम.वी. पायली ने कहा है कि संविधान "प्रान्तीयता की जड़ों पर प्रहार करता है, इकहरी नागरिकता को प्रोत्साहन देता है तथा सामाजिक समानता को सबल बनाता है।"

मूल अधिकारों की निम्नलिखित व्यवस्थायें समतावादी समाज को पुष्ट करती हैं-

(i) अनुच्छेद 14 भारत में रहने वाले सभी व्यक्तियों को "कानून के समक्ष समानता" और "कानून के समान संरक्षण" का अधिकार देता है। यह व्यवस्था भारत में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के स्वेच्छाचारी (मनमाने) एवं भेदभाव पैदा करने वाले कानूनों से सुरक्षा करती है। यह व्यवस्था व्यक्ति की विधायी और कार्यपालिका दोनों की निरंकुशता से रक्षा करती है। इस पर भी संविधान राज्य को विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विशिष्ट कानूनों के निर्माण का अधिकार देता है। इस अधिकार के अन्तर्गत राज्य उचित (न्यायोचित) वर्गीकरण तो कर सकता है परन्तु वर्गीय व साम्प्रदायिक कानूनों का निर्माण नहीं कर सकता।

(ii) अनुच्छेद 15 ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त करता है। राज्य, धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक आधार पर नागरिकों में भिन्नता नहीं कर सकता। अनुच्छेद 15(2) सभी सार्वजनिक स्थानों को अर्थात् दुकानों, होटलों, मनोरंजन के स्थानों, कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों आदि को सभी के लिए खोल देता है। यह व्यवस्था राज्य पर सकारात्मक दायित्व डाल देती है कि वह ऐसी दशायें पैदा करे कि जिससे सभी सार्वजनिक स्थान सभी नागरिकों के प्रवेश के लिए खुले रहें। संविधान इनके उपयोग में किसी प्रकार की शर्त, प्रतिबन्ध या अयोग्यता की मनाही करता है।

संविधान अनुच्छेद 15(3) में और अनुच्छेद 42 में महिलाओं के लिए और अनुच्छेद 16 में पिछड़ी हुई जातियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों के लिए [illegible]

(iii) अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करता है। [illegible] प्रचार दण्डनीय अपराध है। 1955 का अस्पृश्यता [illegible] है। 1976 में इस कानून में संशोधन करके [illegible] इसे प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट एक्ट कहते हैं।

अनुच्छेद 17 की व्यवस्थायें भारतीय समाज [illegible] का निवारण करती हैं। ये इस बात का आश्वासन हैं कि [illegible] में कोई भी अस्पृश्यता का प्रचार या प्रसार नहीं [illegible]

(iv) अनुच्छेद 23 मानव व्यापार और बेगार को निषेध करता है। [illegible] प्रचलन दण्डनीय अपराध है। 1956 का सप्रेशन ऑफ इम्मोरल [illegible] वीमन एण्ड गर्ल्स एक्ट मानव दुर्व्यापार को दण्डनीय [illegible] तरह अनुच्छेद 23 की व्यवस्थायें भारतीय समाज में विद्यमान [illegible] प्रथाओं को, जैसा कि नारियों के क्रय-विक्रय तथा देवदासियों [illegible] हरिजनों, खेतिहर श्रमिकों एवं बच्चों के शोषण को समाप्त करता है। [illegible] मनाही है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अनैच्छिक कार्य करने के लिए [illegible] नहीं कर सकता और न ही इसके लिए शारीरिक या कानूनी शक्ति [illegible] दबाव का प्रयोग कर सकता है। किसी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध [illegible] दिये बिना कोई किसी से कार्य नहीं करवा सकता है।

परन्तु अनुच्छेद 23 जनहित में अनिवार्य सेवा की मनाही नहीं करता [illegible] सार्वजनिक हित में नागरिकों को सैनिक सेवा तथा अन्य सामाजिक सेवायें [illegible] लिए कह सकता है। ये सेवायें मानव दुर्व्यापार या बेगार (बलात् श्रम) की [illegible] में नहीं आतीं। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा पर ही मूल अधिकार निर्भर करते हैं।

(v) अनुच्छेद 24, बच्चों की रक्षा करता है। यह अनुच्छेद 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, खानों व अन्य संकटमय रोजगारों में काम करने की मनाही करता है।

2. अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण-भारत विविधताओं का देश है। [illegible] ग्रेनविल ऑस्टिन ने कहा है, "अल्पसंख्यक वर्गों का संघ है।" यहाँ के निवासी विभिन्न [illegible] एवं जातियों से सम्बन्ध रखते हैं। धर्म और जातियाँ उपजातियों एवं [illegible] वर्ग और जाति का अपना धर्म, अपनी भाषा व संस्कृति है। भारतीय संविधान की [illegible] है कि यह एक समतावादी समाज के साथ एक ऐसे समाज की रचना करता है जिसमें [illegible] से अल्पसंख्यक समुदाय भी अपने आप को सुरक्षित एवं सन्तुष्ट समझें [illegible] दूसरे समुदाय पर अपना आधिपत्य स्थापित न करें।

अल्पसंख्यक वर्गों के [illegible]

अनुच्छेद 26 सभी व्यक्तियों को धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण करने, अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबन्ध करने, जंगम और स्थावर सम्पत्ति के अर्जन एवं स्वामित्व का और ऐसी सम्पत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार देता है।

भारत में राज्य का अपना कोई पंथ या धर्म नहीं। राज्य किसी व्यक्ति को किसी अमुक धर्म के अपनाने या किसी धर्म को छोड़ने के लिए नहीं कहता। राज्य धार्मिक मामलों में तटस्थ है। भारत में धर्म को व्यक्ति का निजी मामला समझा जाता है। राज्य धार्मिक मामलों में तभी हस्तक्षेप करता है जब धर्म सामाजिक [illegible] या अशान्ति पैदा करता है, अथवा धार्मिक संस्थाओं का कुप्रबन्ध किया जाता है या धर्म राज्य की लोककल्याणकारी नीतियों अथवा धार्मिक व सामाजिक सुधारों के मार्ग में बाधा प्रस्तुत करता है। इस तरह राज्य लोक व्यवस्था, [illegible] और स्वास्थ्य रक्षा हेतु धर्म में हस्तक्षेप करने को अपने आपको स्वतन्त्र समझता है।

अनुच्छेद 29 भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग में रहने वाले नागरिकों के [illegible] अपनी भाषा, लिपि व संस्कृति को बनाये रखने का अधिकार देता है। यह [illegible] बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक दोनों प्रकार के वर्गों को उपलब्ध है।

अनुच्छेद 29 (2) इस बात की व्यवस्था करता है कि राज्य द्वारा घोषित या [illegible] से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूल वंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता।

संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी भारतीय संविधान की व्यवस्थायें केवल अद्वितीय [illegible] अल्पसंख्यक वर्गों को आश्वस्त करती हैं कि उनकी भाषा, लिपि व संस्कृति संविधान द्वारा सुरक्षित है और राज्य कानून द्वारा किसी अल्पसंख्यक वर्ग पर कोई अन्य भाषा, लिपि व संस्कृति थोपने का प्रयास नहीं करेगा। भारत में [illegible] को ये स्वतन्त्रतायें निरपेक्ष हैं, योग्यता रखने पर नागरिक किसी भी शिक्षा संस्था में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, राज्य केवल कुशल प्रबन्ध के लिए उनका [illegible] कर सकता है। उपर्युक्त व्यवस्थाओं ने अल्पसंख्यकों में एक नये विश्वास का संचार किया है तथा उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल होने के लिए [illegible] है।

[illegible] वर्गों के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध–भारत में कुछ वर्ग और [illegible] दृष्टि से इतनी पिछड़ी हुई या कमजोर हैं कि विशेष व्यवस्थाओं [illegible] उनका समाज के अभिन्न अंग बन पाना या विकास कर पाना या राष्ट्र

(i) अनुच्छेद 15 (4) राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिये या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष व्यवस्थायें करने का अधिकार देता है।

(ii) अनुच्छेद 16 (4) राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के लिए, यदि राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में उसे पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का अधिकार देता है। इस तरह यह अनुच्छेद राज्य को राज्य के अधीन सेवाओं में "संरक्षात्मक भेद" का अधिकार देता है।

(iii) अनुच्छेद 46 राज्य पर दायित्व डालता है कि वह जनता के दुर्बल वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

(iv) अनुच्छेद 275 राज्य की उन योजनाओं के लिए संघीय सहायता या अनुदान की व्यवस्था करता है जिनका उद्देश्य उस राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण की अभिवृद्धि करने या उस राज्य में अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासन स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उन्नत करना हो। शर्त केवल यह है कि इस प्रकार की योजनाओं को हाथ में लेने से पहले राज्य भारत सरकार का अनुमोदन प्राप्त कर ले।

(v) अनुच्छेद 331 इस बात की व्यवस्था करता है कि यदि राष्ट्रपति की राय में लोकसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय को प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं हो तो वह लोकसभा में उस समुदाय के दो प्रतिनिधियों को नामजद कर सकता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 333 के अनुसार राज्यपाल राज्य विधानसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का एक प्रतिनिधि नामजद कर सकता है।

(vi) अनुच्छेद 330 लोकसभा में और अनुच्छेद 332 राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था करते हैं। इन जातियों के रक्षोपायों से सम्बन्धित सभी विषयों का अन्वेषण करने के लिए अनुच्छेद 338 में विशेष अधिकारी की और अनुच्छेद 340 में आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है।

(vii) अनुच्छेद 347, 350, 350 (क) और 350 (ख) में अल्पसंख्यक वर्गों की भाषा के संरक्षण, भाषा सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने, मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधायें आदि देने से सम्बन्धित अनेक व्यवस्थायें की गई हैं।

4. सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र–फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट ने कहा है कि, "जरूरतमन्द (निर्धन) व्यक्ति स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं होते।" अतः भारतीय संविधान सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र के लक्ष्य की सिद्धि के लिए नीति निर्देशक तत्वों की रचना करता है। [illegible] "आर्थिक स्वतन्त्रता का घोषणा पत्र है।" निर्देशक तत्व "अहिंसक तरीके से [illegible] आर्थिक उद्देश्यों को तत्काल सिद्ध

(9)

[illegible]

उपयोग की सुविधाएँ प्रदान करेगा। इस अनुच्छेद में ग्रामों में कुटीर उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया है। अनुच्छेद 43 (क) उद्योगों के प्रबन्ध में कामगारों के भाग लेने की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 48 कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने पर बल देता है। यह अनुच्छेद राज्य पर यह दायित्व डालता है कि वह गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परीक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा।

इन व्यवस्थाओं का मूल उद्देश्य कुटीर उद्योगों के विकास द्वारा ग्रामों में रोजगार के अवसर बढ़ाना है, नगरों और गाँवों की असमानताओं को दूर करना है तथा राष्ट्र के पशुधन की रक्षा करना है।

(iv) अनुच्छेद 44 भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) की व्यवस्था करता है।

संक्षेप में, मूल अधिकारों व निर्देशक तत्त्वों की उपर्युक्त व्यवस्थाओं से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान प्रथमतः एवं प्रमुखतः एक सामाजिक दस्तावेज (प्रलेख) है। ये व्यवस्थाएँ पिछले [illegible] वर्षों में सामान्य हित में समता-सुधार, परिवर्तन एवं पुनर्निर्माण की प्रमुख प्रेरक शक्ति एवं साधन रही हैं।